इण्डियन कौन्सिल ऑफ फिलोसोफिकल रिसर्च, नई दिल्ली और मीरा स्मृति संस्थान चित्तौड़गढ़ के संयुक्त तत्वावधान में राष्ट्रीय सेमिनार का प्रस्तावित आयोजन

विषय :–   मीरा : दर्शन और भक्ति – (Concept Paper)

अध्यात्म, दर्शन, धर्म, साहित्य एवं लोकजीवन के विविध मनीषियों और विद्वानों ने भक्त शिरोमणि मीराबाई का अपनी–अपनी तात्विक दृष्टियों से आकलन किया है। आचार्य रजनीश मीरा को **तीर्थंकर** की संज्ञा देते हैं तो गीता के महान चिन्तक स्वामी रामसुखदासजी उसे **विरह और भक्ति की प्रतिमूर्ति** बताते हैं। मानस मर्मज्ञ पूज्य मुरारी बापू के अनुसार **मीरा स्वयं भक्ति का अवतार है।** राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की दृष्टि में **मीरा में भारतमाता का रूप साकार** हो उठता है। साहित्य जगत से जुड़े मनीषियों और शोध अध्येताओं ने मीरा की भक्ति, दर्शन और धर्म के मूल में प्रेम को ही प्रमुख तत्व माना है।

मीराबाई के जीवन–दर्शन, भक्ति एवं जीवन–मूल्यों का सर्वाधिक प्रामाणिक और प्राचीनतम उल्लेख भक्तमालकार नारायणदास नाभा ने अपनी भक्तमाल में किया है जो एक प्रकार से मीरा के भक्ति–दर्शन को समझने का प्रवेशद्वार है। नाभाजी के अनुसार ब्रज गोपियों के समान मीरा ने कलियुग में भगवान श्रीकृष्ण की माधुर्यभाव से प्रेमाभक्ति की। अपने भक्तिसाधना पथ पर वे निरअंकुश एवं निडर भाव से अग्रसर हुई और सभी प्रकार की साम्प्रदायिक, पारिवारिक एवं सामाजिक वर्जनाओं को नकार कर परमरसिक रसेश्वर भगवान श्रीकृष्ण के यश का रसपूर्ण गान किया। भक्ति की परीक्षा के अन्तर्गत उन्होंने हलाहल विष को भी अपने प्रभु का चरणामृत मानकर अपने गले में उतार लिया और गीता के उस दर्शन को सत्य सिद्ध किया कि भगवान अपने भक्तों का योग–क्षेम स्वयं वहन करते हैं (गीता–9/22)। मीरा ने इस सत्य को पहचान लिया था कि साधना–पथ की सबसे बड़ी बाधाएँ हैं–लोकलाज, कुल–समाज की मर्यादा और लौकिक जीवन की बेड़ियाँ–अतः उन्होंने तिनके के समान इन सबको तोड़ फेंका। अपनी प्रेमाभक्ति को छिपाने के बजाय उन्होंने परमेश्वर को पति मानने की अपने जीवन–दर्शन की चौड़े–धाड़े उद्घोषणा की – **'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई'**। मीरा ने अपना उपास्य भगवान श्रीकृष्ण के **'गिरधर नागर'** और **'गोपाल'** स्वरूप को बनाया। कृष्ण का यह स्वरूप लोकरक्षक एवं सामान्यजन के सखा तथा गौ प्रतिपालक का है।

मीरा की जीवन यात्रा तथा भक्ति संस्कारों का आविर्भाव व विकास

मीरा के पदों के अन्तर्साक्ष्य से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि भगवान कृष्ण के प्रति पूर्वजन्म के प्रेम को लेकर मीरा कलिकाल में अवतरित हुई। अध्यात्म भी इस जन्म के पहले और बाद की चर्चा करता है और दर्शन इसी तथ्य की पुष्टि करता है। वैष्णव भक्ति में सराबोर मेड़ता के राजवंश में वि.सं. 1561 में माता वीरकुँवरी की कोख से मीरा का जन्म हुआ। माँ की कोख में पलते हुए ही मीरा में भक्ति के संस्कार उत्पन्न हो गये थे और बाद में मेड़ता के भक्तिमय वातावरण ने मीरा के भक्ति संस्कारों को स्थायित्व प्रदान किया। शैशवावस्था से ही मेड़ता के चारभुजा मन्दिर से मीरा का ऐसा घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित हो गया कि वह खेल–खेल में ही भगवान के दिव्य विग्रह को अपनी आँखों में बसा बैठी। भ्रमर गीत में सूर की गोपियाँ कहती हैं – **'लरकाई को प्रेम कहो अलि कैसे छूटे'**, यह बात मीरा की प्रेमाभक्ति पर पूरी तरह लागू होती है। मीरा की मनोभूमि में भी लरकाई में ही कृष्ण प्रेम का जो बीज अंकुरित हुआ वह आगे चलकर आध्यात्मिक प्रेम के विराट वृक्ष के रूप में विकसित होकर उसके समस्त जीवन में फैल गया। एक बार बालहठ कर बैठी मीरा को उसकी माता ने कृष्ण की मूर्ति की ओर इंगित कर बताया कि यही तुम्हारा दूल्हा है तो मीरा के बाल संस्कारों में गहराई तक यह बात बैठ गई कि **'जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई'**। इस आस्था से मीरा अपने सम्पूर्ण जीवन में तनिक भी न डिगी।

सात वर्ष की उम्र में मीरा को एक साधु से गिरधर गोपाल की एक सुन्दर सलौनी मूर्ति प्राप्त हुई जिसका अर्चन–पूजन ही मीरा की दिनचर्या बन गई। प्रतिपल अपने गिरधर गोपाल की स्मृतियों में वह खोई रहती थी। ऐसे ही क्षणों में एक दिन स्वप्नावस्था में गिरधर गोपाल से मीरा का विवाह सम्पन्न हो गया और वह अविनाशी कृष्ण की परिणिता बन गई और साथ ही पूर्ण हो गई उसकी पूर्वजन्म की चिरप्रतीक्षित आकांक्षा। इस सम्बन्ध में मीरा का एक पद 'माई म्हाने सुपणाँ में परण्या दीनानाथ' दृष्टव्य है।

सांसारिक रीतिरिवाजों एवं पारिवारिक दबावों के चलते मीरा का लौकिक विवाह चित्तौड़ के महाराणा सांगा के पुत्र भोजराज से सम्पन्न हुआ। चित्तौड़ का राणा परिवार और सामन्ती समाज परिवार की नववधू से अपेक्षा करता था कि कुल परम्पराओं के अनुसार वह पति केन्द्रित होकर ऐशोआराम का जीवन जीये और लौकिक रीतिरिवाजों व मर्यादाओं का पालन करे। किन्तु मीरा तो अलग ही रंग में रंगी हुई थी। भौतिक आकर्षण उसे लुभा न सके। वह तो अलौकिक प्रभु के एकनिष्ठ प्रेम से ही बंधी रही। परिणामस्वरूप संघर्षों का दौर शुरू हुआ और इन्हीं संघर्षों में मीरा के भक्ति–दर्शन एवं अलौकिक प्रेम के दर्शन की पृष्ठभूमि विकसित होती गई।

विवाह के पाँच–सात वर्ष के भीतर ही मीरा के पति भोजराज चल बसे। परिवारजनों ने मीरा को अपने दिवंगत पति के साथ सती होने की सलाह दी, किन्तु मीरा ने दृढ़ता से उद्घोषणा की **'गिरधर गास्याँ सती न होस्याँ, मन मोह्यो घणनामी'**। भगवान कृष्ण की परिणिता होने के कारण वह अपने आपको अचल सुहागिन मानती थीं।

मीरा का जीवन–दर्शन धारा के प्रतिकूल जीवन जीने का दर्शन था। उम्र के तेरहवें वर्ष में विवाह कर मीरा चित्तौड़ आई थीं। इतनी छोटी उम्र में अपने भक्तिपथ पर अग्रसर होने के लिए कदम–कदम पर संघर्षों से जूझने का उसने जो निर्णय किया था, यह अपने आपमें एक अप्रतिम जीवन दृष्टि थी। भोजराज के निधन के समय मीरा की उम्र मात्र 18–20 वर्ष की रही होगी, हम अनुमान कर सकते हैं कि कितनी आत्मशक्ति उसने अपने अन्दर संचारित कर ली थी। खानवा के युद्ध के कारण वि.सं. 1584 में पिता और श्वसुर का साया भी उसके सिर से उठ गया था। साथ ही चित्तौड़ के राजपरिवार और रनिवास की परिस्थितियों में भारी उथल–पुथल का दौर प्रारम्भ हुआ। वि.सं. 1588 में चित्तौड़ की राजगद्दी पर विक्रमादित्य के आसीन होने के बाद तो मीरा के जीवन में सर्वाधिक यन्त्रणाओं, तिरस्कार, प्रताड़ना, अपमान आदि का दौर प्रारम्भ हुआ। उसकी भक्ति–साधना, साधु–संगत, भजन–कीर्तन–नर्तन आदि राजपरिवार को इतने अनुचित लगे कि उन्होंने मीरा के जीवन को ही समाप्त करने के लिए विविध षड्यन्त्र रचे। चरणामृत के नाम पर उसे हलाहल विषपान कराया गया, काले नाग से डसाने का उपक्रम किया गया। किन्तु भक्ति का प्रभाव और अपने आराध्य पर उसका विश्वास इतना अडिग था कि विष भी अमृत बन गया।

चित्तौड़ की परिस्थितियों को भक्ति साधना की दृष्टि से बाधक मानकर मीरा ने वि.सं. 1589 के अन्त तक चित्तौड़ का परित्याग कर दिया। कुछ समय अपने पितृ परिवार के साथ रहने के उपरान्त वह लौकिक जीवन के समस्त सम्बन्धों को छोड़कर चल पड़ी ब्रज भूमि के लिये जो कृष्णभक्तों के लिए रसक्षेत्र था। भगवान कृष्ण की लीलास्थली वृन्दावन में उसने अपने आराध्य के विभिन्न स्वरूपों के दर्शन किये। विभिन्न सम्प्रदायों के सन्तों–भक्तों के सत्संग का लाभ लिया। उनके वृन्दावन प्रवास की सबसे प्रमुख घटना रही जीव गोस्वामी से उनके संवाद की जिसमें मीरा के तर्कों से पराजित होकर जीव गोस्वामी ने त्रियामुख न देखने का अपना प्रण तोड़ा। जीव गोस्वामी के नाम मीरा का सन्देश समाजशास्त्रीय दर्शन के क्षेत्र का एक ऐतिहासिक एवं युग प्रवर्तक वक्तव्य है जो आज भी स्त्री–पुरुष विभेद के सन्दर्भ में प्रासंगिक है।

ब्रज के धार्मिक सम्प्रदायों की कट्टरता, संकीर्णता और रागद्वेष से मीरा का मन आहत हुआ और वह ब्रज छोड़कर द्वारका आ गई। कुछ समय के उपरान्त चित्तौड़ के महाराणा उदयसिंह ने मीरा को वापस लिवा लाने के लिए अपने पुरोहितों का एक दल द्वारका भेजा। जब मीरा ने जगत में लौटने से साफ इन्कार कर दिया तो ब्राह्मणों ने अनशन कर प्राण त्यागने की धमकी दे दी। इस धर्म संकट से उबरने के लिए मीरा ने अपने प्रभु से आर्तस्वरों में प्रार्थना की तो प्रभु ने उसे अपने आनन्दलोक में समा लिया। दर्शन भी इस बात की पुष्टि करते हैं कि मीरा की दिव्य आत्मा कृष्ण में विलय हो गई, दिव्य ज्योति महाज्योति में समा गई। अंश अन्ततः अंशी में समाकर एकाकार हो गया।

मीरा की भक्ति का दार्शनिक पक्ष

दार्शनिक दृष्टिकोण से मीरा की भक्ति साधना की विवेचना करने पर यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि मीरा आज के युग में भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी वह अपने समकालीन युग में थी, बल्कि यह कहना अधिक समीचीन होगा कि वह आज और अधिक प्रासंगिक होकर हमें संस्पर्श करने लगी है। चाहे यजुर्वेद का 'भद्रभाव' हो, या सामवेद की 'सांगीतिक परम्परा' का विविध राग–रागनियों में विकास करना हो, या गीता के 'निष्काम भाव' का पल्लवन हो, सबकी भूमिका का सन्दर्भ मीरा के पदों और भजनों से सम्बद्ध है। नारी जागृति और नारी गौरव आज विश्व की प्रमुख सोच बन गई है– मीरा ने नारी जाति की सामाजिक चेतना अपने युग में प्रबुद्ध कर दिखाई थी। कठोपनिषद् के नचिकेता की भाँति वह 'मृत्युंजय' बनी रही, जहर पीकर भी उसने शंकराचार्य के वैराग्य को साकार कर दिखाया। चैतन्य महाप्रभु का 'दिव्य प्रणय' शताब्दियों पूर्व उसमें रूपायित हुआ था। राजा राममोहन राय द्वारा निषेधित 'सतीप्रथा' की उदात्त एवं व्यापक भूमिका देकर उसने भोजराज को कृष्ण के माध्यम से अमरत्व प्रदान किया। महर्षि दयानन्द द्वारा निर्देशित 'आत्मसंयम' एवं 'ब्रह्मचर्य' उसके जीवन का जीता जागता उदाहरण रहा है। स्वामी विवेकानन्द और महर्षि अरविन्द का 'कर्मयोग' एवं 'समत्वयोग' उसने अपनी जीवन–धारा के साथ प्रवाहित किया था। महात्मा गान्धी के 'सादाजीवन और उच्च विचार' जैसे चिन्तन को उसने राजसी सुख–सुविधाओं को त्यागकर चरितार्थ कर दिखाया। जनपथ पर चलकर उसने जनतान्त्रिकता और लोकमानसिकता की नाड़ी को वर्षों पूर्व पहचान लिया था। पर्दाप्रथा जैसी अनेक कुरीतियों को तोड़कर उसने सत्संगति का मार्ग प्रशस्त किया था। मीराबाई की सदैव अन्तःप्रेरणा यही रही कि भगवत–प्रेम और भक्ति के भाव को जनमानस तक पहुँचाये। भले ही उसने शास्त्र नहीं पढ़े, किसी सम्प्रदाय या गुरु का आश्रय नहीं लिया, परन्तु प्रेम के अढ़ाई आखर' को इस प्रकार आत्मसात किया कि भक्ति के समस्त दर्शन और भक्ति के सभी सूत्र उसमें अपने आप उतर आये। मीरा आज देश–काल की

सीमाओं को लांघकर भक्ति की विश्व विरासत बन चुकी है, यही मीरा की भक्ति का सबसे महत्त्वपूर्ण दार्शनिक आयाम है।

दर्शन शास्त्र की कसौटी पर मीरा की भक्ति एवं साधना पथ तथा दिव्य जीवन दृष्टि का आकलन निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर किया जा सकता है।

1. वैष्णव भक्ति सिद्धान्तों के परिप्रेक्ष्य में मीरा का भक्ति–दर्शन

शंकराचार्य के अद्वैतवाद, रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैतवाद, मध्व का द्वैतवाद, आचार्य वल्लभ के शुद्धाद्वैतवाद, चैतन्य महाप्रभु के अचिन्त्य भेदाभेदवाद आदि वैष्णव आचार्यों के भक्ति सिद्धान्तों के परिप्रेक्ष्य में मीरा के भक्ति दर्शन का अध्ययन एक प्रमुख विषय बन सकता है।

2. मीरा का दर्शन जीवन को जीने का दर्शन

भक्ति आचार्यों की भाँति मीरा न तो दार्शनिक आचार्य थीं, और न ही आचार्य भक्त। अन्य किसी के निर्देश का प्रश्न भी उनके सम्बन्ध में लागू नहीं होता है। दार्शनिक दृष्टि से सृष्टि के चरम सत्य की मीमांसा न तो उनका ध्येय था और न ही स्वभाव। वे तो विशुद्ध रूप से एक भक्त थीं, भक्ति की साकार प्रतिमा थीं, चिरन्तन प्रियतम के लिए अनन्त प्रणय का एक मधुर स्पन्दन थीं। उनका दर्शन जीवन को देखने का नहीं वरन् दिव्य मूल्यों के साथ, जीवन जीने का दर्शन था।

3. भगवान कृष्ण की सगुण भक्ति

भागवत् के अनुसार भक्त के लिए भगवद्भक्ति ही सबसे सरल, सुलभ और सुगम मार्ग है। मीरा ने अपनी भक्ति का आलम्बन भगवान कृष्ण के गिरधरनागर, गोपाल आदि स्वरूपों को बनाया। भगवान कृष्ण से मीरा की पूर्वजन्म की प्रीत है तथा बाल्यकाल से ही गिरधर गोपाल का सगुण रूप उनके मानस में स्थापित हो चुका था। मीरा ने अपने आराध्य को लौकिक रूप में ही चित्रित किया। पूर्णावतार कृष्ण उनकी सम्पूर्ण माधुर्योपासना का धुरी बिन्दु है। भागवत, गीता और महाभारत का यह परात्पर पुरुष योगेश्वर भले ही रहा हो किन्तु मीरा के लिए तो वह 'मेरो पति सोई' है। भक्तिमती मीरा के जीवन में मूर्ति का बड़ा महत्त्व है, उसका प्रारम्भ ही मूर्ति से होता है और उसके जीवन का समापन भी मूर्ति में ही होता है।

4. भक्ति सूत्र एवं मीरा की भक्ति

भक्ति शास्त्र के आचार्यगण शाण्डिल्य एवं नारद ने जिन भक्ति सूत्रों का प्रणयन किया है, वे सभी सूत्र मीरा की भक्ति में स्वतः भी रूपायित हो गये थे। महर्षि शाण्डिल्य के अनुसार अपने आराध्य में अनन्य अनुराग या अनन्य प्रेम ही भक्ति है। यही बात महर्षि नारद भी कहते हैं। मीरा अपने आराध्य गिरधर गोपाल में अनन्य भाव से अनुरक्त है। उनके उद्घोष '**मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई**' में सभी दर्शनों व शास्त्रों का सार समाहित हो गया है।

महर्षि नारद का भक्ति सूत्र 'सा त्वस्मिन परम प्रेमरूपा। अमृत स्वरूपा च। यल्लब्ध्वा पुमान सिद्धो भवति, अमृतो भवति, तृप्तो भवति' मीरा की भक्ति में पूर्णरूप से चरितार्थ होता है। सारे लौकिक रिश्तों–नातों को त्यागकर मीरा ने अपने प्रियतम श्रीकृष्ण से अनन्य प्रेमाभक्ति का सम्बन्ध जोड़ा और स्वयं कृष्णमय हो गई। नारद भक्ति सूत्र में वर्णित प्रेमाभक्ति की ग्यारह आसक्तियों में से वात्सल्यासक्ति के अतिरिक्त अन्य सभी आसक्तियाँ मीरा के पदों में देखने को मिलती हैं।

5. नवधाभक्ति और मीरा

श्रीमद्भागवत में वर्णित नवधा भक्ति–श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन मीरा के पदों में दृष्टव्य है।

6. मीरा माधुर्यभक्ति की साकार प्रतिमा

ब्रह्म–जीव–सम्बन्ध के आधार पर मीरा की कान्तासक्ति मधुराभक्ति के रूप में प्रकट हुई है। अपने आराध्य एवं प्रियतम कृष्ण के प्रति प्रगाढ़ प्रेम की पराकाष्ठा ही रागानुगा या प्रेमाभक्ति है। गिरधर गोपाल के प्रति दाम्पत्य भाव की आराधना मीरा की साधना के वे परमोज्ज्वल भाव हैं जिन पर मीरा की माधुर्यभक्ति का आध्यात्मिक महल खड़ा है। मीरा ने प्रेम के पथ में सर्वात्म समर्पण कर गिरधर गोपाल को अपना प्राणवल्लभ पति माना और जीवन की सभी अभिलाषाओं व आकांक्षाओं को श्रीकृष्णार्पण कर दिया। मीरा के माधुर्यभाव में सभी प्रकार का द्वैत समाप्त होकर केवल एक ही राग रह जाता है'– मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई'। मीरा की माधुर्यभक्ति चैतन्य सम्प्रदाय द्वारा प्रवर्तित रागानुगा अथवा प्रेमाभक्ति के अति निकट है। यह एक ऐसी दिव्य स्थिति है जिसमें आत्मा व परमात्मा एकाकार हो जाते हैं। यहाँ द्वैत होते हुए भी अद्वैत है और अद्वैत होते हुए भी द्वैत है।

7. मीरा व्याकुल विरहणी

नारद ने परमविरहासक्ति को भक्ति की संज्ञा दी है। प्रेम तत्त्व का मूल आधार विरह है। प्रेम और विरह का परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है। जिसने प्रेम के क्षेत्र में पैर रखा उसे विरह की अग्नि में जलना ही होगा। मीरा का सारा जीवन अपने साँवरिया के विरह में ही व्यतीत हुआ। विरहरूपी स्वयंभू रस में जो छटपटाहट है, उसमें मीरा को एक विलक्षण एवं अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति होती है। मिलन और विरह के विकल्प में मीरा जैसी माधुर्यभाव की भक्त के लिए प्रिय का विरह की अधिक श्रेष्ठ है क्योंकि विरह में ही प्रेम अधिकाधिक उज्ज्वल होता है। 'उज्ज्वल नीलमणि' में व्यक्त विरह की दसों अवस्थाएँ मीरा में दृष्टव्य हैं। विरहणी मीरा के नेत्रों से अविरल अश्रुपात होता है, मुख मलिन और शरीर कुम्हलाया रहता है। इस विरहावस्था में वह पल–पल अपने प्रियतम से मानसिक तादात्म्य स्थापित किये रहती हैं। मीरा के विरह के भाव भागवत् के दसम स्कन्ध के 31वें

अध्याय का स्मरण करा देते हैं। नारद भक्ति सूत्र (67, 68 एवं 70) भी मीरा जैसे विरहासक्त भक्तों की दशाओं का ही चित्रण करते हैं।

8. तुत्सुखी सुखित्वं एवं स्वकीया भाव

मीरा के कृष्णप्रेम की तुलना गोपी प्रेम से की जाती है। नाभाजी ने भी मीरा की भक्ति को गोपियों की भक्ति के समान माना है। अन्तर दोनों में इतना ही है कि गोपियाँ परकीया हैं, जबकि मीरा स्वकीया। मीरा का प्रियतम गिरधर गोपाल केवल और केवल मीरा का है। मीरा व गिरधर के बीच अन्य कोई नहीं है। वह अपने प्रियतम की सखी, प्रेमिका और पत्नी सबकुछ है। मीरा का उज्ज्वल श्रृंगार निराला है क्योंकि इसमें न दैहिक आकर्षण का भाव है और न दैहिक तृप्ति की आकांक्षा। यहाँ तक कि मीरा को कृष्ण के दर्शनशास्त्र में भी किसी प्रकार की रूचि नहीं है, उसको तो कृष्ण के रूप में रस है।

मीरा की माधुर्य भक्ति में स्वसुख भाव के स्थान पर 'तत्सुखी सुखित्वं' का भाव विद्यमान है। स्वसुख की भावना में श्रृंगार एवं कामरस का प्राधान्य होता है जबकि तत्सुखी सुखित्वं भाव में माधुर्य या उज्ज्वल रस रहता है। इसी भाव से मीरा ने अपने आराध्य गिरधर की उपासना की।

9. मीरा का दर्शन लोक से सम्बद्ध

मीरा का दर्शन शास्त्र से अधिक लोक से जुड़ा हुआ है। राज परिवार में जन्म लेने और राजपरिवार में ब्याहने के उपरान्त भी मीरा राजसी वैभव एवं भौतिक सुख–सुविधाओं से पूर्णतः दूर रही और लोक से जुड़ी रही। इसीलिए मीरा को लोकनिधि कहा जाता है। लोक ने ही मीरा को समाज में जीवित रखा है। मीरा के भावलोक का जो व्यापक विस्तार हुआ है, वह भी लोक का ही अवदान है। मीरा ने लोक का सहारा लेकर दर्शन की दुरूहता को सरल, व्यावहारिक और सर्वसुलभ बना दिया है। मीरा तो प्रेम और भक्ति की वह लोकपावनी गंगा है जो अपनी भक्ति–तरंगों में अवगाहित कर नास्तिक को भी आस्तिक बनाकर उसकी मुक्ति के द्वार खोल देती है। मीरा की लोकभक्ति ने ईश्वर को भी मानव बना दिया।

10. मीरा का नारी–दर्शन

मीरा की वाणी में केवल उनकी भक्ति ही नहीं बोलती है, अपितु समस्त नारी समाज का दर्द और संत्रास भी बोलता है। मीरा नारी चेतना, नारी स्वातन्त्र्य की अग्रदूत है। उनके काव्य में युगों–युगों से प्रताड़ित एवं उपेक्षित नारी की मूक व्यथा के साथ–साथ सामाजिक प्रतिरोधों का सामना करने की दृढ़ शक्ति और अटूट संकल्प दृष्टिगत है। मीरा नारी समाज को अपने जीवन मूल्यों के अनुसार जीवन जीने का संदेश देती है और नारी मुक्ति के स्वर के रूप में प्रासंगिक बनी हुई है। वृन्दावन में मीरा और जीव गोस्वामी का संवाद एक ऐसे युग प्रवर्तक सामाजिक दर्शन का

ज्वलन्त उदाहरण है जिसने भक्ति के क्षेत्र में और सामाजिक धरातल पर स्त्री–पुरुष विभेद की भावना को ध्वस्त कर दिया।

11. बन्धन मुक्त भक्ति का दर्शन

मीरा की भक्ति साधना उनके स्वतन्त्र चिन्तन और स्वतन्त्र व्यक्तित्व के सिद्धान्तों पर आधारित थी। इसीलिए न तो उन्होंने लौकिक बन्धनों को स्वीकार किया और न ही किसी भक्ति पंथ या सम्प्रदाय के आश्रय को स्वीकार किया। मीरा की दृष्टि केवल अपने परमलक्ष्य पर थी और इस लक्ष्य को प्राप्त करने के ऐकान्तिक पथ पर वह अकेली चली, न किसी की शिष्या बनी, न किसी गुरु या सम्प्रदाय के आचार्य की कंठी धारण की और न अपना कोई सम्प्रदाय चलाया। मीरा ने शास्त्रों के इस कथन को अपने जीवन में चरितार्थ किया कि ''बन्धना जानवरों का धर्म है''। अपनी वैचारिक स्वतन्त्रता पर उनका इतना अडिग विश्वास और निडरता का भाव था कि उन्होंने सामन्ती व्यवस्था को ललकारते हुए यह कहने का साहस जुटाया –'' **नहिं भावै थारो देसड़लो रंगरूड़ो राणा। थांरा देसां में साध नहिं छै, लोग बसै सब कूड़ो**''। अपने जीवन में उन्होंने विभिन्न सम्प्रदायों के आचार्यों, भक्तों व सन्तों के सत्संग का लाभ अवश्य लिया किन्तु किसी पंथ की सदस्यता नहीं ली। मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन के इतिहास में मीरा एक ऐसी विरल विभूति है जिसने बिना किसी आश्रय के अपने आत्मबल, निडरता, पूर्ण आत्मविश्वास और अपने आराध्य के प्रति पूर्ण समर्पण भाव से भक्ति साधना कर अन्ततः अपने जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त किया।

12. सात्विक विद्रोह एवं सत्याग्रह का दर्शन

मीरा सामन्ती युग और सामन्ती समाज की विश्व की प्रथम सात्विक विद्रोह एवं सत्याग्रह की जीवन्त विभूति थी। इसीलिए महात्मा गान्धी ने उन्हें महान त्यागी, बलिदानी और सत्याग्रही माना है। उज्ज्वल चरित्र की धनी मीरा के हृदय में अपने आराध्य की अपने मूल्यों के अनुसार भक्ति का दृढ़ संकल्प था, सभी प्रकार के विरोधों और प्रतिकूलताओं को सहन करने की अदम्य शक्ति थी। अपने भक्तिपथ पर आगे बढ़ने के लिए उन्होंने स्वजनों, परिजनों, लोकलाज, कुल मर्यादा आदि की चिन्ता नहीं की। वह न तो झुकी, न मुड़ी, न किसी से टकराव में अपनी शक्तियों का क्षय किया, अपनाया तो केवल सत्य पथ। सत्य के प्रति आग्रह के कारण उन्होंने चित्तौड़ छोड़ दिया, परिजनों को त्याग दिया किन्तु अपना भक्तिपथ नहीं छोड़ा। भक्तिमार्ग पर चलते हुए उन्होंने लोक रूढ़ियों, लोकमर्यादाओं और नारी परतन्त्रता की जंग लगी श्रृंखलाओं को तोड़ फेंका। सर्वाधिक अपमान, तिरस्कार और घोर यन्त्रणाओं का जहर पीकर भी वह निर्भय एवं अडिग बनी रही। भक्ति के माध्यम से इतनी बड़ी क्रान्ति करने के बावजूद भी उन्होंने न कोई बगावत की, न हिंसा एवं असत् का मार्ग चुना, वह तो पूरे जीवनभर महासन्त ही बनी रही।

13. मीरा का भक्ति दर्शन बहुआयामी

मीरा के व्यक्तित्व में ज्ञान, कर्म और भक्ति की एकरूपता का अद्‌भुत समन्वय है। उन्होंने अपने आचरण एवं कर्म की भूमि को ज्ञान और भक्ति की धरती पर सजाया है। वह चाहे राजमहलों में रही या लोक के बीच झोपड़ियों में, परन्तु भक्ति की साधना पर अडिग रही। उनका दर्शन प्रेम का दर्शन है जिसमें उनका द्वैत अद्वैत में परिवर्तित होकर आत्मा–परमात्मा के अटूट सम्बन्ध के सत्य को प्रकाशित करता है। कृष्ण–प्रेम के भाव में ही उनका दर्शन व चिन्तन अभिमुख हो उठता है और उनके प्रेम की व्याख्या में सारे दर्शन स्वतः अवतरित हो जाते हैं। मीरा में भक्ति और प्रेम अलग–अलग नहीं हैं। प्रेम और भक्ति का शास्त्रीय द्वैत उनमें नहीं है। यह सत्य है कि मीरा मूलतः एक भक्त थीं, उनके पास दर्शन और चिन्तन की वह उहापोह नहीं थी जो एक दार्शनिक के पास होती है, परन्तु एक जीवन दृष्टि अवश्य थी जो मार्ग का संधान करती है। वैसे भक्त अपने आपमें एक दार्शनिक भी होता है, अतः मीरा की भक्ति एवं काव्य में दर्शन के तत्व पदे–पदे दृष्टिगत होते हैं।

मीरा के भक्ति दर्शन में वेद, पुराण, उपनिषद्, संहिताएँ, श्रीमद्‌भागवत, गीता, रामायण, महाभारत, पांचरात्र, शंकर के अद्वैतवाद, रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैतवाद द्वैताद्वैतवाद, आचार्य मध्व के द्वैतवाद, आचार्य निम्बार्क के द्वैताद्वैतवाद, आचार्य वल्लभ के शुद्धाद्वैतवाद व पुष्टि भक्ति, चैतन्य महाप्रभु के अचिन्त्य भेदाभेदवाद, माधवेन्द्रपुरी की गोपाल पूजा आदि दार्शनिक सिद्धान्तों के तत्त्व दृष्टिगोचर होते हैं।

कृष्णप्राण मीरा का समग्र जीवन और उनकी भक्ति साधना व अध्यात्म का एक अतल महारत्नाकर है जिसमें से हम अपनी–अपनी रूचि, सामर्थ्य और चिन्तन दृष्टि के आधार पर रत्नों का चयन कर सकते हैं। यही नहीं, उनकी भक्ति के गौण उत्पाद जैसे नारी मुक्ति, सात्विक विद्रोह, लोकमंगल, जीवन की पवित्रता, समता, उदारता, मैत्री, करुणा, लोकदृष्टि आदि भी आधुनिक सन्दर्भों में अत्यन्त प्रासंगिक प्रतीत होते हैं।

14. मीरा के भक्ति–दर्शन के सूत्र

मीरा की जीवनदृष्टि, भक्तिसाधना–पद्धति, भक्तिमूल्यों और उनमें निहित दर्शनशास्त्र के तत्वों की विवेचना करने के लिए हमारे पास केवल तीन आधारभूत सन्दर्भ हैं– (1) मीरा के जीवन की घटनाएँ (2) मीरा का पद साहित्य, एवं (3) सन्तों–भक्तों के मीरा सम्बन्धी उल्लेख। इनमें से भी सबसे महत्त्वपूर्ण उनके पद हैं जिनमें उनकी जीवन दृष्टि और भक्ति व दर्शन के तत्त्व पदे–पदे दृष्टिगोचर हैं। मीरा के पदों को लेकर विद्वानों ने अनेक ग्रन्थों की रचना की है, किन्तु विगत पाँच शताब्दियों में मीरा के भावलोक का इतना अधिक विस्तार प्रक्षिप्त पदों के कारण हो चुका है कि हमें पदों के चयन में सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है। प्रामाणिकता की दृष्टि से प्राचीनतम पद–संग्रहों – वि.सं. 1642 की डाकोर प्रति, वि.सं. 1727 की काशी प्रति, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश, जोधपुर में संग्रहीत वि.सं. 1631 का गुटका, वि.सं. 1661 में संकलित गुरुग्रन्थ साहेब की बन्नो साहब प्रति, गुजरात विधानसभा, अहमदाबाद का वि.सं. 1695 का अविचलदास संग्रह, वि.सं. 1701 का भीमगणि विजय का संग्रह और वि.सं. 1713 का किसी गुजराती लिपिकार का गुटका, नागरीदास पद प्रसंग माला में संग्रहीत मीरा के छः पद (रचनाकाल वि.सं. 1780–1800) अध्ययन की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। बहिर्साक्ष्यों के रूप में नाभाजी की भक्तमाल एवं इसकी प्रियादासी टीका, हरिराम व्यास, गुजराती कवि विष्णुदास, राधावल्लभीय हित ध्रुवदास, राघवदास की भक्तमाल, निम्बार्काचार्य परशुराम देवाचार्यजी के मीरा विषयक उल्लेख प्रामाणिक माने जा सकते हैं।

इण्डियन कौन्सिल ऑफ फिलोसोफिकल रिसर्च, नई दिल्ली तथा मीरा स्मृति संस्थान, चित्तौड़गढ़ के संयुक्त तत्वावधान में आयोज्य राष्ट्रीय सेमिनार

विषय : मीरा : दर्शन एवं भक्ति

उप विषय

1. मीरा के भक्ति काव्य में उपनिषद् के सन्दर्भ
2. मीरा की भक्ति पर श्रीमद्भागवत की प्रतिच्छाया
3. भगवद्गीता और मीरा की भक्ति
4. मीरा के भक्ति काव्य में नित्यानित्य विवेक
5. मीरा की भक्ति और वेदान्त दर्शन
6. शुद्धाद्वैतवाद (वल्लभदर्शन) और मीरा की भक्ति
7. रामानुज का विशिष्टाद्वैतवाद, दास्य भक्ति और मीरा
8. मीरा के भक्ति काव्य में ईश्वर, माया और जगत की स्थिति
9. सांख्य दर्शन और मीरा की भक्ति (प्रकृति–पुरुष–विवेक)
10. मायावाद का स्वरूप और मीरा की भक्ति
11. मीरा के भक्तिकाव्य में नियतिवाद/भाग्यवाद
12. सूफी दर्शन और मीरा की प्रेमाभक्ति
13. नारद एवं शाण्डिल्य भक्ति सूत्रों के परिप्रेक्ष्य में मीरा की भक्ति का स्वरूप
14. ब्रह्मसूत्र के 'लीलावस्तु कैवल्यम्' के संदर्भ में मीरा का कृष्ण–लीला–वर्णन
15. अवतारवाद, पौराणिक आख्यान और मीरा का काव्य
16. उज्ज्वल नीलमणि (जीव गोस्वामी) और 'भक्ति रसामृत सिन्धु' के आलोक में मीरा का भक्ति चिन्तन
17. मीरा की भक्ति में दाम्पत्य का अलौकिक स्वरूप
18. बौद्धदर्शन की महायान भक्ति और मीरा की भक्ति साधना
19. कर्मफलवाद और मीरा
20. जन्म जन्मान्तरवाद (पुनर्जन्मवाद) और मीरा

21. मीरा के भक्ति काव्य में बंधन और मोक्ष
22. मीरा की सगुण भक्ति का स्वरूप
23. मीरा की भक्ति में भारतीय दर्शन के सनातन–तत्व
24. मीरा का लोकदर्शन
25. मीरा का नारीदर्शन
26. निम्बार्क का द्वैताद्वैतवाद एवं मीरा की भक्ति
27. आचार्य रजनीश की दृष्टि में मीरा की भक्ति
28. मीरा का रहस्यवाद
29. सन्त–भक्त कवियों और मीरा के भक्ति दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन

(1) राष्ट्रीय सेमिनार की सम्भावित तिथियाँ सितम्बर या अक्टूबर माह की होगी। तिथियों का निर्णय होते ही तत्सम्बन्धी सूचना सभी को प्रेषित कर दी जाएगी।

(3) आलेख कम्प्यूटर से कृतिदेव 10 में वर्ड फाइल एवं PDF बनाकर साफ्टकॉपी ई–मेल प्रो. सत्यनारायण समदानी, मीरा स्मृति संस्थान, 108, प्रतापनगर, रोड़ नं. 8, चित्तौड़गढ़–312001 (राजस्थान) samdanisatya@gmail.com **साथ ही एक प्रति ईमेल की** seminar.icpr@gmail.com **पर 30 जुलाई 2018 तक भेजी जा सकती है।**

(4) आलेख भेजने से पूर्व आलेख टंकण का प्रूफ पूरी तरह देखकर सुनिश्चित करलें कि इसमें कोई गलती या विसंगति तो नहीं रह गई है।

प्रतिभागियों को आलेख के चयन होने पर सेमिनार में प्रस्तुतिकरण के लिये आमंत्रित किया जाएगा तथा इस हेतु यात्रा व्यय एवं आवासादि व्यवस्था भारतीय दार्शनिक अनुसंधान परिषद् के नियमानुसार देय होगी।